

● सातवाँ अध्याय : ज्ञानविज्ञानयोग ●

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः॥

श्री भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥1॥

श्री भगवान् बोले: हे पार्थ ! मुझमें अनन्य प्रेम से आसक्त हुए मनवाला और अनन्य भाव से मेरे परायण होकर, योग में लगा हुआ मुझको संपूर्ण विभूति, बल ऐश्वर्यादि गुणों से युक्त सबका आत्मरूप जिस प्रकार संशयरहित जानेगा उसको सुन। (1)

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥2॥

मैं तेरे लिए इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को संपूर्णता से कहूँगा कि जिसको जानकर संसार में फिर कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्ममां वेत्ति तत्त्वतः ॥3॥

हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझको तत्त्व से जानता है। (3)

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥4॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥5॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश और मन, बुद्धि एवं अहंकार... ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी प्रकृति है। यह (आठ प्रकार के भेदों वाली) तो अपरा है अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान कि जिससे यह संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है। (4,5)

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥6॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥7॥

हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों (परा-अपरा) से उत्पन्न होने वाले हैं और मैं संपूर्ण जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलयरूप हूँ अर्थात् संपूर्ण जगत् का मूल कारण हूँ। हे धनंजय ! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण सूत्र में मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है। (6,7)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो ।

प्रणवः सर्वदेवेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥8॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥9॥

हे अर्जुन ! जल में मैं रस हूँ। चंद्रमा और सूर्य में मैं प्रकाश हूँ। संपूर्ण वेदों में प्रणव (ॐ) मैं हूँ। आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व मैं हूँ। पृथ्वी में पवित्र गंध और अग्नि में मैं तेज हूँ। संपूर्ण भूतों में मैं जीवन हूँ अर्थात् जिससे वे जीते हैं वह तत्त्व मैं हूँ तथा तपस्वियों में तप मैं हूँ। (8,9)

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥10॥

हे अर्जुन ! तू संपूर्ण भूतों का सनातन बीज यानि कारण मुझे ही जाना। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ। (10)

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥11॥

हे भरत श्रेष्ठ ! आसक्ति और कामनाओं से रहित बलवानों का बल अर्थात् सामर्थ्य मैं हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम मैं हूँ। (11)

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।

मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥12॥

और जो भी सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मेरे से ही होने वाले हैं ऐसा जाना। परन्तु वास्तव में उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं। (12)

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।

मोहतं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥13॥

गुणों के कार्यरूप(सात्त्विक, राजसिक और तामसिक) इन तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को वह तत्त्व से नहीं जानता । (13)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मयामेतां तरन्ति ते ॥14॥

यह अलौकिक अर्थात् अति अदभुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंतर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं । (14)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहतज्ञानां आसुरं भावमिश्रिताः ॥15॥

माया के द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करनेवाले मूढ़ लोग मुझे नहीं भजते हैं । (15)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥16॥

हे भरतवंशियो में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्मवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी – ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझे भजते हैं । (16)

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥17॥

उनमें भी नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित हुआ, अनन्य प्रेम-भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि मुझे तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यंत प्रिय है । (17)

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वातमैव मे मतम् ।

आस्थितः स हि युक्तात्मा

मामेवानुत्तमां गतिम् ॥18॥

ये सभी उदार हैं अर्थात् श्रद्धासहित मेरे भजन के लिए समय लगाने वाले होने से उत्तम हैं परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही हैं ऐसा मेरा मत है। क्योंकि वह मदगत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है । (18)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥19॥

बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है- इस प्रकार मुझे भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है । (19)

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥20॥

उन-उन भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं । (20)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥21॥

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ । (21)

सतया श्रद्धया युक्तस्तस्यासधनमीहते ।

लभते च ततः कामान्मयैव

विहितान्हितान् ॥22॥

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है । (22)

अन्तवत्तु फलं तेषां तद् भवत्यल्पमेधसाम् ।

देवान्देवयजो यान्ति मद्

भक्ता यान्ति मामपि ॥23॥

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अंत में मुझे ही प्राप्त होते हैं । (23)

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥24॥

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम, अविनाशी, परम भाव को न जानते हुए, मन-इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानंदघन परमात्मा को मनुष्य की भाँति जानकर व्यक्ति के भाव को प्राप्त हुआ मानते हैं । (24)

